印地语时文

第一册

孙卫国 编

中国人民解放军外国语学院
一九九四年十一月

विष्यसूची

१. ———————————————————— १

२. ———————————————————— ३२

३. ———————————————————— ७३

४. ———————————————————— १०९

५. ———————————————————— १४५

६. ———————————————————— १७७

भारतीय समाज एवं संस्कृति की विशेषताएं

मानव इसलिए मानव है कि उसके पास संस्कृति है । संस्कृति के अभाव में मानव को पशु से श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता । संस्कृति ही मानव की श्रेष्ठतम धरोहर है जिसकी सहायता से वह प्रगति की ओर उन्मुख होता जा रहा है । मानव और पशु में मुख्य अन्तर संस्कृति का ही है । मनुष्य में ही कुछ ऐसी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताएं पायी जाती हैं जिसके कारण वह संस्कृति का निर्माता बन सका । मनुष्य सीधा खड़ा हो सकता है, स्वतन्त्रतापूर्वक अपने हाथों को घुमा सकता है, इन हाथों की सहायता से वस्तुओं को पकड़ सकता है, हाथों से निर्माण कार्य कर सकता है । वह अपनी तीक्ष्ण एवं केन्द्रित की जा सकने वाली दृष्टि से सूक्ष्म अवलोकन कर सकता है, विविध घटनाओं को घटित होते हुए देख सकता है और अपने मेधावी मस्तिष्क से सोच सकता है तथा अनेक आविष्कार कर सकता है । भाषा के आविष्कार ने मानव को वह शक्ति प्रदान की है जिसकी सहायता से वह विचारों का आदान-प्रदान कर सकता है, अपने चिन्तन के परिणामों को आगे आने वाली पीढ़ियों को हस्तान्तरित कर सकता है । वास्तव में, भाषा और प्रतीकों के माध्यम से ही मानव ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में

उन्नति कर पाया है । अतः स्पष्ट है कि मानव ही विश्व में एक ऐसा प्राणी है जो अपनी विशेषताओं एवं क्षमताओं के कारण सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माण पाया है ।

भारत के लोगों और उनकी समाज-व्यवस्था को जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम उनकी संस्कृति से भली-भांति परिचित हो जायें । किन्तु भारतीय संस्कृति को समझने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि संस्कृति कहते किसे हैं तथा सभ्यता और संस्कृति में, जिनका कि प्रयोग साधारणतः पर्यायवाची के रूप में किया जाता है, क्या अन्तर है ?

सभ्यता और संस्कृति--संस्कृति शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है । साहित्यकारों, समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने इसे भिन्न-भिन्न रूप से परिभाषित किया है । संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा से लिया गया है । एक हिन्दू अपने जीवन में अनेक प्रकार के संस्कार करता है । इससे उसके जीवन का परिमार्जन होता है । संस्कारों के द्वारा ही एक मानव सामाजिक प्राणी बनता है । संस्कृति का अर्थ है विभिन्न संस्कारों के द्वारा सामूहिक जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति करना ।

संस्कृति वह समग्र जटिलता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा और ऐसी ही अन्य क्षमताओं एवं आदतों का समावेश

है जिन्हें मनुष्य समाज का एक सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है । उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि संस्कृति एक सामाजिक विरासत है, वह समाज द्वारा मानव को दिया गया उपहार है जिसमें भौतिक और अभौतिक दोनों ही वस्तुएं सम्मिलित हैं ।

सभ्यता और संस्कृति का अनेक बार समान अर्थों में प्रयोग किया जाता है किन्तु इनमें पर्याप्त अन्तर है । समाजशास्त्री मानव द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्मित समस्त भौतिक वस्तुओं जैसे घड़ी, पेन, टेबुल, कुर्सी, मोटर, रेल, वस्त्र, बर्तन, कृषि के औजार, मशीन, यन्त्र, पुस्तक, मकान, रेडियो, टेलीफोन और अन्य हजारों-लाखों म वस्तुओं को सभ्यता की श्रेणी में रखते हैं और मानव द्वारा निर्मित अभौतिक वस्तुओं जैसे प्रथा, रीति-रिवाज, कानून, धर्म, दर्शन, कला, ज्ञान, विज्ञान आदि को संस्कृति कहते हैं । इस प्रकार सभ्यता देह है तो संस्कृति उसमें अनुप्राणित आत्मा । मानवशास्त्री संस्कृति में मानव द्वारा निर्मित भौतिक और अभौतिक दोनों ही वस्तुओं को सम्मिलित करते हैं । मार्गन का मत है कि मानव संस्कृति का उद्विकास तीन स्तरों में हुआ है--आरण्य , बर्बरता तथा सभ्यता । इस प्रकार मार्गन के अनुसार सभ्यता संस्कृति के उद्विकास का एक चरण, एक स्थिति है । मानवशास्त्रीय अर्थ के अतिरिक्त सभ्यता को मानव की

此为试读,需要完整PDF请访问: www.ertongbook.com

भौतिक उपलब्धि और संस्कृति को मानव की अभौतिक उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया गया ।

भारतीय समाज एवं संस्कृति की विशेषताएं

भारतीय समाज एवं संस्कृति मानव समाज की एक अमूल्य निधि है । यदि संसार की कोई संस्कृति अमर कही जा सकती है तो निस्सन्देह वह भारतीय संस्कृति ही है जो अपनी समस्त आभा और प्रतिभा के साथ चिरकाल से स्थायी है । पृथ्वी के विभिन्न भागों में निवास करने वाले लोगों ने अपनी अपनी भिन्न-भिन्न भौगोलिक एवं प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण अलग-अलग प्रकार की संस्कृति एवं समाजों को जन्म दिया । अपने सुदीर्घ इतिहास में भारत के निवासियों ने एक ऐसी समाजव्यवस्था एवं संस्कृति का विकास किया जो अपने आप में मौलिक, अनूठी और विश्व की अन्य संस्कृतियों एवं समाज-व्यवस्थाओं से भिन्न है । इस देश के महापुरुष, तीर्थस्थान, प्राचीन कलाकृतियां, धर्म, दर्शन और सामाजिक संस्थाएं भारतीय समाज एवं संस्कृति के सजग प्रहरी रहे हैं, उन्होंने इस देश की संस्कृति को अजर-अमर बनाने में योग दिया है । हम यहां भारतीय समाज को संस्कृति की उन विशेषताओं का उल्लेख करेंगे जिनके कारण हजारों साल बीत

जाने पर भी वह अभी तक जीवित है ।

(१) प्राचीनता एवं स्थायित्व--भारत की संस्कृति एवं समाज-व्यवस्था विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों एवं समाज-व्यवस्था में से एक है । मिस्र , असीरिया, बेबीलोनिया, यूनान, रोम और भारत की संस्कृतियां विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से हैं । समय के साथ विश्व की अन्य प्राचीन संस्कृतियां तो नष्ट हो गयीं, समय के प्रवाह में जाने कहां बह गयीं और उनके अवशेष मात्र ही बचे हैं । मिस्र की प्राचीन संस्कृति में गगनचुम्बी विशाल पिरामिडों का निर्माण किया जाता था, पितरों की ममी बनाकर रखा जाता था किन्तु अब यह सब इतिहास की बातें बनकर रह गयी हैं । प्राचीन रोमन और यूनानी धर्मों का आज कोई अनुयायी नहीं, उनके द्वारा दिये गये विचारों से आज कोई प्रेरित नहीं होता । हजारों वर्ष बीत जाने पर भी भारत की आदि संस्कृति एवं समाज-व्यवस्था आज भी जीवित है । आज भी हम भारत के वैदिक धर्म को मानते हैं, आज भी पवित्र वैदिक मन्त्रों का तन्मयता के साथ यज्ञ एवं हवन के समय उच्चारण किया जाता है, आज भी विवाह वैदिक रीति से होता है, गांव-पंचायत, जाति-प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली आज

भी विद्यमान हैं । गीता, बुद्ध और महावीर के उपदेश आज भी इस देश में जीवित और जाग्रत हैं, आध्यात्मवाद, प्रकृति-पूजा, पतिव्रत धर्म, कर्म और पुनर्जन्म, सत्य, अहिंसा और अस्तेय के सिद्धान्त की गूंज आज भी इस देश के लोगों को प्रेरित करती है । भारतीय जीवन के मूल आधार आज भी वही हैं जो प्राचीन भारत में थे । सदियां बीत गयीं, न जाने कितने उत्थान और पतन आये, विदेशी आक्रमण हुए किन्तु भारतीय समाज एवं संस्कृति का प्रकाशमय दीपक आज भी प्रज्वलित है, उसका अतीत वर्तमान में जीवित है ।

(२) सहिष्णुता--भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक महान विशेषता उसकी सहिष्णुता है । भारत में सभी धर्मों, जातियों, प्रजातियों एवं सम्प्रदायों के प्रति उदारता , सहिष्णुता एवं प्रेम-भाव पाया जाता है । किसी के भी प्रति कठोरता या द्वेष-भाव नहीं । हमारे यहां समय-समय पर अनेक विदेशी संस्कृतियों का आगमन हुआ और सभी को फलने-फूलने का अवसर उपलब्ध रहा । यहां किसी भी संस्कृति का दमन नहीं किया गया और न ही किसी समूह पर संस्कृति थोपी ही गयी है । अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों की संस्कृतियां समान रूप से यहां विद्यमान हैं । हिन्दू, मुसलमान, सिख, बौद्ध, जैन, ईसाई सभी अपनी-अपनी विशेषताएं बनाये हुए हैं । अपवादों को

छोड़कर हमारे यहां धार्मिक युद्ध एवं साम्प्रदायिक संघर्ष नहीं हुए हैं । यहां असहिष्णु होकर कभी भी विदेशियों एवं अन्य संस्कृतियों के लोगों पर बर्बर अत्याचार नहीं किये गये ।

(३) समन्वय--भारतीय संस्कृति की उदार एवं सहिष्णु प्रकृति के कारण ही इसमें विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय हो पाया है । भारतीय संस्कृति वह समुद्र है जिसमें विभिन्न संस्कृति रूपी नदियां अपना पृथक् अस्तित्व समाप्त कर विलीन हो गयी हैं । जनजातीय, हिन्दू, मुस्लिम, शक, हूण, ईसाई आदि सभी संस्कृतियों के प्रभाव के उपरान्त भी भारतीय संस्कृति नष्ट नहीं हुई वरन् उनसे समन्वय ही स्थापित किया है । मुसलमानों के सम्पर्क से " दीने इलाही" धर्म पनपा । मुसलमानों का सूफी सम्प्रदाय भारत के आध्यात्मवाद, योग-साधना और रहस्यवाद का मुस्लिम संस्करण है । मुस्लिम पीरों के मकबरे बनाकर उनकी पूजा करना भारतीय संस्कृति की ही देन है । संगीत विरोधी इस्लाम में पीर-पैगम्बरों की भक्ति भारतीय कीर्तन का ही रूपान्तरण है । राम और रहीम तथा कृष्ण और करीम की एकता स्थापित कर महापुरुषों द्वारा हिन्दू और इस्लाम धर्म समन्वय करने का प्रयत्न किया गया । इसी प्रकार से बौद्ध धर्म,

का ही अंग व बन गया । बुद्ध को राम और कृष्ण की भांति ही अवतार माना जाता है । बोधि-वृक्ष हिन्दुओं का भी पवित्र वृक्ष है और बौद्ध-चैत्य हिन्दू मन्दिरों में परिवर्तित हो गये । यवन, शक, हूण और कुशाण आदि लोगों को भारतीय समाज का अंग बना लिया गया । स्पष्ट है कि भारतीय समाज एवं संस्कृति में समन्वय की महान शक्ति है । इसलिए ही वह निरन्तर गतिमान रही और आज तक अपने अस्तित्व को बनाये हुए है । उसी गतिशीलता ने भारतीय संस्कृति की परम्पराओं को अब तक अक्षुण्ण रखा है ।

(४) आध्यात्मवाद--भारतीय समाज एवं संस्कृति में आध्यात्मवाद को महत्व दिया गया है । यहां भौतिक सुख और भोग-लिप्सा को कभी भी जीवन का ध्येय नहीं माना गया । भारतीय समाज में आत्मा और ईश्वर के महत्व को स्वीकार किया गया है और शारीरिक सुख के स्थान पर मानसिक एवं आध्यात्मिक आनन्द को सर्वोपरि माना गया है । धर्म और आध्यात्मिकता भारतीय समाज व संस्कृति की आत्मा है । इसमें भोग एवं त्याग का सुन्दर समन्वय पाया जाता है । आध्यात्मवाद ने ही सहिष्णु प्रवृत्ति को जन्म दिया है ।

(५) धर्म की प्रधानता--भारतीय समाज व संस्कृति धर्म-प्रधान है । यहां धर्म के द्वारा मानव जीवन के प्रत्येक व्यवहार को नियन्त्रित

करने का प्रयास किया गया है । भारतीय समाज एवं संस्कृति के विभिन्न अंगों पर धर्म की स्पष्ट छाप दिखायी देती है । भारतीय अपने जन्म से मृत्यु तक तथा सूर्योदय से सूर्यास्त तक दैनिक एवं वार्षिक जीवन में अनेक धार्मिक कृत्यों की पूर्ति करता है । भारतीयों का धर्म संकुचित धर्म नहीं है वरन् मानवतावादी धर्म है । यह सभी जीवों के कल्याण, क्षमा और दया में विश्वास करता है । भारतीय धर्म प्रत्येक जीव में ईश्वर का अंश मानता है और इसलिए वह जीवमात्र की भलाई में विश्वास करता है ।

(६) अनुकूलनशीलता-भारतीय समाज एवं संस्कृति को अमर बनाने में इसकी अनुकूलनशील प्रकृति का महान योग है । इसमें समय के साथ परिवर्तित होने की अद्भुत क्षमता है । भारतीय परिवार, जाति, धर्म एवं संस्थाएं समय के साथ अपने को अनुकूल बनाती रही हैं । यही कारण है कि उनका विघटन और पतन होने की अपेक्षा केवल रूप परिवर्तित होता रहा है ।

(७) वर्णाश्रम--भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक विशेषता वर्णों एवं आश्रमों की व्यवस्था है । समाज में श्रम विभाजन हेतु चार वर्णों--ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र--की रचना की गयी । ब्राह्मण समाज में बुद्धि और शिक्षा के प्रतीक हैं तो क्षत्रिय

此为试读,需要完整PDF请访问: www.ertongbook.com

शक्ति के। वैश्य भरण-पोषण की व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था का संचालन करते हैं तो शूद्र अन्य सभी वर्णों की सेवा करते हैं। सभी वर्णों के अधिकार एवं कर्तव्यों का भारत में सुन्दर समन्वय पाया जाता है।

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने मनुष्य की आयु १०० वर्ष मानकर उसका चार आश्रमों--ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास--में समान रूप से विभाजन किया था। जहां वर्ण व्यक्ति की प्रकृति को प्रकट करते हैं, वहीं आश्रम उसके मानसिक और आध्यात्मिक विकास को। वर्ण और आश्रम दोनों ही जीवन की समस्याओं तथा जीवन-दर्शन पर निर्भर हैं। भारतीयों की वर्णाश्रम व्यवस्था विश्व-इतिहास को एक अद्वितीय देन है। आश्रमों का उद्देश्य मानव के चार पुरुषार्थों---धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष---की पूर्ति करना है जिनके आधार पर ही व्यक्ति का सामाजिक एवं व्यावहारिक जीवन चलता है।

(८) कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त--भारतीय समाज एवं संस्कृति में कर्म को अधिक महत्व दिया गया है। यह माना जाता है कि अच्छे कर्मों का अच्छा और बुरे कर्मों का बुरा फल मिलता है। भारत में व्यक्ति की आत्मा को अजर-अमर माना गया है। मरने के बाद वह पुनः किस योनि में जन्म लेगा, यह इस पर निर्भर करता है कि

उसने पिछले जन्म में किस प्रकार के कर्म किये थे । श्रेष्ठ कर्म करने वाले को ऊंची योनि में जन्म मिलता है और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने को मिलता है जबकि बुरे कर्म करने पर उसे निम्न और हेय योनि में जन्म लेना होता है तथा नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं । कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने भारतीयों को सदैव अच्छे कर्म करने को प्रेरणा दी है । भारतीयों की धारणा है कि सत्कर्म करने से इहलोक और परलोक दोनों सुधरते हैं ।

(९) सर्वांगीणता--भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक विशेषता यह है कि इसका सम्बन्ध किसी जाति, वर्ग, धर्म या व्यक्ति विशेष से नहीं है वरन् समाज के सभी पक्षों से इसका सम्बन्ध है और इसके निर्माण में राजा, किसान व मजदूर, शूद्र, ब्राह्मण, शिक्षित व अशिक्षित, देशी एवं विदेशी लोगों तथा विभिन्न धर्मों एवं महा-पुरुषों--सभी का योगदान रहा है । इसलिए ही इसमें सर्वोदय एवं सभी के कल्याण की बात है । इसलिए भारतीय संस्कृति में कहा गया है: " सर्वे भवन्तु सुखिनः" अर्थात् सभी सुखी हों ।

(१०) विविधता में एकता--भारत में धर्म, जाति, प्रजाति, सम्प्रदाय, भाषा, संस्कृति, भौगोलिक रचना एवं राजनैतिक दृष्टि से अनेक भिन्नताएं पायी जाती हैं, फिर भी सभी भारतीयों में

एकता एवं संगठन पाया जाता है । उनकी एक आत्मा और उनमें एकरसता है इस विशेषता पर हम आगे सविस्तार चर्चा करेंगे ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय समाज एवं संस्कृति की अपनी कुछ मौलिक विशेषताएं हैं उन्हीं के कारण वह आज तक जीवित है और विश्व में इसे सम्मान तथा आदर की दृष्टि से देखा जाता है । इन विशेषताओं के कारण ही विदेशी विद्वानों का ध्यान इसने अपनी ओर आकर्षित किया है । वर्ण-व्यवस्था ने समाज में कार्य-विभाजन पैदा कर समाज-व्यवस्था में एकता बनाये रखी तो आश्रमों ने मानव जीवन के व्यवस्थित विकास की योजना प्रस्तुत की । सहिष्णुता एवं समन्वय की प्रवृत्ति ने विदेशी संस्कृतियों से संघर्ष को बचाया और उन्हें भारतीय संस्कृति में ही आत्मसात् करने में योग दिया । धर्म की प्रधानता, कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों ने भारतीयों को जनहित में कार्य करने की प्रेरणा दी और बुराइयों से दूर रखा । इसमें सभी जीवों के हित एवं कल्याण की भावना विद्यमान है । यजुर्वेद में कहा गया है, " सब प्राणी मुझे अपना मित्र समझें और मैं सब प्राणियों को अपना मित्र समझूं ।" यही बात है कि विविधता में एकता लिए भारतीय संस्कृति की ज्योति आज भी प्रकाशमान है । भारतीय संस्कृति के

स्थायित्व को देखकर ही कवि इकबाल ने कहा था:

यूनान, मिश्र, रूमा सब मिट गये जहां से ।
अब तक मगर है बाकी मानो निशां हमारा ।।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी ।
सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-जहां हमारा ।।

विविधता में एकता

भारतीय समाज एवं संस्कृति की एक अनन्य विशेषता है--विविधता में एकता । इस विशेषता ने ही इसे अनन्त काल से अब तक जीवित रखा है । भारत में प्रजाति, धर्म, संस्कृति एवं भाषा की दृष्टि से अनेक विभिन्नताएं पायी जाती हैं । इन विभिन्नताओं के होते हुए भी सम्पूर्ण राष्ट्र में एकता के दर्शन होते हैं । इस सन्दर्भ में पंडित नेहरू ने एक बार कहा था, " भारत का सिंहावलोकन करने वाले भारत की अनेकता और विभिन्नता से बहुत अधिक प्रभावित हो जाते हैं । वे भारत की एकता को साधारणत: नहीं देख पाते, यद्यपि युगों-युगों से भारत की मौलिक एकता ही उसका महान् एवं मौलिक तत्व रहा है । पांच या छ: हजार वर्ष हुए कि सिन्धु घाटी की सभ्यता उत्तर में फली-फूली और कदाचित् दक्षिण भारत तक फैल गयी ।

इतिहास के उस प्रभाव से अगणित जातियां, विजेता, तीर्थ-यात्री एवं उत्तर एशिया की ऊंची-ऊंची भूमि से भारत के मैदान में सैर के लिए आये, उन्होंने भारतीय जीवन, संस्कृति और कला को प्रभावित किया, किन्तु वे इसी देश में विलीन हो गये । इन सम्पर्कों से भारत में परिवर्तन हुआ किन्तु उसकी आत्मा मौलिक रूप से पुरानी रही है । यह तभी सम्भव हुआ होगा जब मौलिक एकता की भावना की जड़ें गहराई तक हों, जब उन्हें नवागन्तुकों ने भी स्वीकार किया हो ।"
इस कथन से स्पष्ट है कि भारत में विभिन्नता में एकता प्राचीनकाल से विद्यमान रही है और यहां तक कि बाहर से आने वाले लोग भी इस एकता से प्रभावित हुए और अपनी विभिन्नता को भी यहां की एकता में घुला-मिला दिया । भारत की विभिन्नता में एकता के दर्शन जिन क्षेत्रों में किये जाते हैं वे इस प्रकार से हैं:

(१) भौगोलिक विविधता में एकता--भौगोलिक दृष्टि से भारत में अनेक विषमताएं व्याप्त हैं । यह उष्ण एवं समशीतोष्ण कटिबन्धों की जलवायु का प्रदेश है । चेरापूंजी में वर्ष में लगभग ६००" वर्षा होती है तो दूसरी तरफ राजस्थान के थार के मरुस्थल में ५" से भी कम वर्षा होती है । घने उपजाऊ एवं कम उपज पैदा करने वाले दोनों ही प्रकार के प्रदेश यहां पाये जाते हैं । उत्तर में हिमालय पर्वत है,

उसके बाद मैदानी भाग है और दक्षिणी भारत एक पठारी एवं प्रायद्वीपीय प्रदेश है ।

इन विविधताओं के बावजूद भी सम्पूर्ण देश भौगोलिक दृष्टि से एक इकाई का निर्माण करता है । देश की प्राकृतिक सीमाओं ने इसे अन्य देशों से पृथक् किया है और यहां के देशवासियों में एक क्षेत्र में निवास करने की भावना जाग्रत की है, उनमें एकता और जन्म-भूमि के प्रति अगाध प्रेम पैदा किया है । " माता भूमिः पुत्री अहं पृथिव्या" (पृथ्वी मेरी मां है और मैं इसका पुत्र हूं), " जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" (जिस धरती पर जन्म लिया है वह स्वर्ग से भी प्यारी है) आदि धारणाओं ने देश में त्याग और बलिदान की भावना पैदा की है ।

(२) ऐतिहासिक विविधता में एकता--प्राचीन काल से ही भारत में विभिन्न धर्मों एवं प्रजातियों के लोग आते रहे हैं । उनके इतिहास में भिन्नता का होना स्वाभाविक है।किन्तु जब वे भारत में स्थायी रूप से बस गये तो उन्होंने एक समन्वित संस्कृति एवं सामान्य इतिहास का निर्माण किया ।

(३) धार्मिक विविधता में एकता--भारत विभिन्न धर्मों की

此为试读,需要完整PDF请访问: www.ertongbook.com